

वैदिक ऋषि-तत्त्व-विमर्श

डॉ. प्रयाग नारायण मिश्र

भारतीयवाङ्मय के बृहद् इतिहास की सुदीर्घ-परम्परा में आद्य-ज्ञानराशि के रूप में वेदों का अस्तित्व सर्वसम्मत है। इस वेद तथा वैदिकवाङ्मय को आचार्यों ने मन्त्र-ब्राह्मण-आरण्यक एवम् उपनिषद्-सञ्ज्ञक चार वर्गों में विभाजित करके वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र के रूप में जिस ज्ञानकोश की प्रधानत्वेन गणना की जाती है, उसे प्रायः चतुर्दशाविद्या-धर्मस्थान के रूप में लोक-विश्रुति प्राप्त है। जैसा कि याज्ञवल्क्य का अभिमत है –

पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥^१

कुछ आचार्यों ने इसमें चार उपवेदों को भी सम्मिलित करके अष्टादश विद्या-स्थानों या धर्म-स्थानों का सङ्केत किया है। इसके अतिरिक्त संवर्गात्मक अनेकविध विपुल ज्ञानराशि भी भारतीय-वाङ्मय की अप्रतिम शोधि है। वस्तुतः इन समस्त विषयों के साक्षात्करण-धारण-प्रणयन अथवा सर्जन का श्रेय किसी न किसी विलक्षण तपःपूत, मेधासम्पन्न आर्ष तथा अनार्ष ऋषि अथवा ऋषिकल्प आचार्यों के प्रातिभ-प्रसव को ही है। इसीलिए वैदिक ऋषियों से लेकर उपर्युक्त विविध शास्त्रों से सम्बद्ध तत्तद् ऋषियों की एक सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होती है जिसका व्यवस्थित प्रबन्धन एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है। फिर भी, आधारत्वेन वैदिक ऋषियों से प्रारम्भ करके इस उपक्रम की पृष्ठभूमि निर्मित की जा रही है।

वैदिक-अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न देवताओं के प्रति विविध स्तुतियों का प्रयोग करके उन्हें प्रसन्न करना तथा उनसे ऐश्वर्य, सम्पत्ति तथा संरक्षण एवं सहायता आदि प्राप्त करना ऋषियों की प्रधान विशेषता रही है। ये ऋषि अपनी सजीव स्तुतियों द्वारा देवताओं की अव्यक्त शक्ति को व्यक्त बनाते थे, ऐसे सङ्केत भी अनेक मन्त्रों में मिलते हैं।^२

^१ याज्ञवल्क्यस्मृति १.३

^२ (क) ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जूहुरेऽवसे महि। ऋग्वेद १.४८.१४

(ख) इन्द्रमिदहरीं वहतोऽप्रतिघृष्टशवसम्

ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् । तदेव १.८४.२

(ग) स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमैत प्रतिभूषति। तदेव ५.७५.१

(घ) पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणाम् । तदेव ६.३४.१

(ङ) यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् । तदेव ६.४४.१३

(च) ये च पूर्व ऋषयो ये च नूता इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः । तदेव ७.२२.९

ऋषि-तत्त्व की परिभाषा

ऋषि-तत्त्व की दो प्रधान परिभाषाएँ मिलती हैं- 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'^३ अर्थात् ऋषि वे हैं जिन्होंने समाधि की अलौकिक स्थिति में मन्त्रों का दर्शन किया। निरुक्त में यास्क ने 'ऋषि' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए औपमन्यव आचार्य के अनुसार यह कहा है कि 'ऋषि' शब्द 'दृश' धातु से निष्पन्न हुआ है क्योंकि ऋषियों ने स्तोमों (मन्त्रों) का दर्शन किया।^४ निरुक्त में यहीं एक और उद्धरण मिलता है जिसके अनुसार यह शब्द गत्यर्थक 'ऋष्' धातु से निष्पन्न माना गया है। इस उद्धरण में यह कहा गया है कि- 'तपस्या में रत (समाधिगत) इन ऋषियों के पास मन्त्र गये अथवा उन्हें प्राप्त हुए।'^५

शतपथब्राह्मण^६ में 'ऋषि' शब्द को 'रिष्' धातु से निष्पन्न माना गया है - "श्रमेण तपसा अरिषन्त, तस्माद् ऋषयः"। यहाँ 'रिष्' धातु का अर्थ 'तप करना' है। 'ऋषि' शब्द को चाहे 'दृश' धातु से निष्पन्न माना जाय अथवा ऋष् से या रिष् से, प्रत्येक स्थिति में इस शब्द का यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि ऋषि वे हैं जिन्होंने तपस्यारत होकर समाधि में मन्त्रों का दर्शन किया। समाधि की स्थिति में मन्त्रों का दर्शन करना अथवा ऋषि के पास मन्त्रों का प्राप्त होना वस्तुतः एक ही बात है जिसे दो ढँग से कहा गया है। मन्त्र-दर्शन को लौकिक स्तर पर अथवा बुद्धि को समझाने के लिए मन्त्र-प्रणयन अथवा मन्त्रों की रचना भी कह सकते हैं।

इन आद्य-ऋषियों की इस असाधारण विशेषता को स्पष्ट करते हुए यास्क का मत है कि ऋषियों ने 'धर्म' अर्थात् मन्त्र का साक्षात्कार किया था अथवा समाधि की अलौकिक एवम् अतिविशिष्ट स्थिति में दिव्य चक्षुओं द्वारा मन्त्रों का प्रत्यक्ष दर्शन किया था-

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः"।^७

निरुक्त की इस पङ्क्ति की व्याख्या करते हुए स्कन्द ने अपने भाष्य में यह स्वीकार किया है कि यहाँ 'धर्म' शब्द का प्रयोग वैदिक मन्त्रों के लिये किया गया है। उनकी व्याख्या के अनुसार अतीन्द्रिय एवम्

^३ एवम् उच्चावचैरभिप्रायैः ऋषीणां मन्त्रद्रष्टयो भवन्ति। निरुक्त ७.३

^४ ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शन्त्यौपमन्यवः। तदेव २.११

^५ "तद् यदेनास्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भवानर्षत्, तद् ऋषीणाम् ऋषित्वम्" इति विज्ञायते। तदेव २.११ अजान् ह वै पृथ्वीस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भवानर्षत्। तद् ऋषयोऽभवन्। तैत्तिरीय-आरण्यक २.९

^६ शतपथब्राह्मण ६.१.१

^७ निरुक्त १.२०

आर्विर्भूतप्रकाशानाम् अनुपप्लुतचेतसाम्।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥

अतीन्द्रियममवेद्यं पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।

ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥ वाजसनेयिप्रातिशाख्य १.३६-३८

असंवेद्य धर्म के स्वरूप को किसी न किसी विशिष्ट-रूप में देखा जा सकता है और यह विशिष्ट-रूप इस प्रसङ्ग में मन्त्र ही हो सकता है।

निरुक्त के दूसरे प्रमुख व्याख्याकार आचार्य दुर्गा ने अपनी व्याख्या में, ‘ऋषि’ शब्द को ‘ऋष्’ (दर्शने) धातु से निष्पन्न मानते हुए यह अभिप्राय प्रकट किया है कि जिन विशिष्ट व्यक्तियों ने मन्त्रों का, विविध अवसरों पर विविध कार्यों में प्रयोग करके उनसे उत्पन्न होने वाले फलों का साक्षात्कार किया; वे ऋषि हैं। इस प्रकार दुर्गा के अनुसार मन्त्र से उत्पन्न होने वाले फलों के लिए औपचारिकवृत्ति से यहाँ, ‘साक्षात्कृतधर्माणः’ पद में ‘धर्म’ शब्द का प्रयोग किया गया है –

“ऋषन्ति-अमुष्मात् कर्मणः एवम् अर्थवता मन्त्रेण संयुक्ताद् अमुना प्रकारेण एवं लक्षणः

फल-विपरिणामो भवति इति- पश्यन्ति त ऋषयः।”^४

ऋषियों के द्वारा मन्त्रों के साक्षात्कार अथवा दर्शन करने की बात को ध्यान में रखकर ही बृहद्देवता तथा अनुक्रमणी-ग्रन्थों में बार-बार ‘मन्त्रदृक्’ तथा ‘अपश्यत्’ जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है।

‘ऋषि’ शब्द की दूसरी प्रसिद्ध परिभाषा – ‘यस्य वाक्यं स ऋषिः’ के अनुसार मन्त्ररूप वाक्यों (वचनों, कथनों) के वक्ता ऋषि हैं। अभिप्राय यह है कि जिस-जिसने अपनी जिस-जिस कामना की पूर्ति के लिए देवता की स्तुति की, उस-उस को उन-उन मन्त्रों का ऋषि मान लिया गया।^५

ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों में नदी, सरमा, पणि इत्यादि का जो ऋषित्व मिलता है, वहाँ इस दूसरी परिभाषा को और व्यापक बनाकर इन स्थलों की सङ्गति लगायी गयी है। अभिप्राय यह है कि जो भी जिस मन्त्र का वक्ता है, चाहे वह चेतन हो, हमारी दृष्टि में कितना ही निकृष्ट हो, मनुष्येतर प्राणी हो अथवा अचेतन हो, वह उस वाक्य (उन-उन संवाद-मन्त्रों) का ऋषि है। इस दृष्टि से नदी, सरमा, पणि आदि का ऋषित्व सुसङ्गत है। दूसरे शब्दों में ‘ऋषि’ शब्द का यहाँ अर्थ है ‘वक्ता’^६। परन्तु इन स्थलों के विषय में यह स्वीकार करना होगा कि मन्त्रकार इन तथाकथित वक्ता ऋषियों से भिन्न कोई व्यक्ति है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देवताओं के प्रति स्तुति-रूप मन्त्रों के द्रष्टा, प्रयोक्ता अथवा वक्ता व्यक्ति ऋषि हैं। जिन मन्त्रों में देवताओं की स्तुति नहीं है अपितु किसी भाव, विधि अथवा निषेध या अन्य किसी प्रकार का कथन है, वहाँ भी उन-उन वचनों (मन्त्रों) के प्रयोक्ता (वक्ता) को ऋषि माना गया। यहाँ ‘द्रष्टा’ तथा ‘प्रयोक्ता’ इन दोनों पदों के अभिप्रायों में एक विशेष अन्तर प्रतीत होता है जिनके आधार पर ऋषियों के दो स्तर बन जाते हैं। प्रथम स्तर में वे आद्य-ऋषि

^४ निरुक्त दुर्गाचार्यकृत-टीका-समवेतं भाग १, पृ. ११४

^५ यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायाम् आर्थपत्यम् इच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदैवतः स मन्त्रो भवति....। निरुक्त ७.१, बृहद्देवता १.६

^६ संवादेष्वाह वाक्यं यः स तु तस्मिन् भवेद् ऋषिः। बृहद्देवता २.२८

आते हैं जिन्होंने मन्त्रों का साक्षात्कार अर्थात् मन्त्रों का दर्शन किया। दूसरी श्रेणी में वे ऋषि आते हैं जिन्होंने उन दृष्ट मन्त्रों का प्रयोग किया, उनसे विभिन्न देवताओं का स्तवन किया; उन्हें जीवन में चरितार्थ किया अथवा दूसरे शब्दों में उन्हें सिद्ध किया।^{११} इन्हीं द्वितीय स्तर वाले ऋषियों के लिए निरुक्त में सम्भवतः 'अवर' (ऋषि) शब्द का प्रयोग हुआ है।^{१२}

ऐसा प्रतीत होता है कि मन्त्रों में प्रयुक्त 'अङ्गिरस्' इत्यादि नाम, जिन्हें ऋषियों का व्यक्तिवाचक नाम माना जाता है। वे व्यक्तिवाचक नाम न होकर प्रतीक मात्र होकर दैवी (दिव्य अथवा असाधारण) विशेषताओं के बोधक हैं। बाद में ये नाम ऋषियों के व्यक्तिगत नाम के रूप में प्रसिद्ध हो गये। जिस-जिस ऋषि (मन्त्रार्थद्रष्टा या अनुप्रयोक्ता) ने उन-उन विशिष्ट पदों वाले मन्त्रों का अथवा तत्सम्बद्ध देवों का साक्षात्कार किया, वे-वे ऋषि उन्हीं-उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार मूलतः वेदों के शब्दों से ऋषियों के नाम रखे गये।^{१३}

डॉ. कपिल के अनुसार वैदिक नामकरण से ऋषियों का अपना वैयक्तिक नाम लुप्त हो गया। उसका स्थान, मन्त्रगत विशेषण अथवा प्रतीक बने 'अङ्गिरस्' आदि शब्दों ने ले लिया। दिव्यता की साकार एवं सजीव मूर्ति इन तपोधन-ऋषियों को यदि इन दिव्य विशेषणों की, नाम के रूप में प्राप्ति हुई तो इसमें अनौचित्य भी क्या है? समाधि की प्रक्रिया में यह माना जाता है कि जब तक द्रष्टा तथा दृश्य, साधक तथा साध्य एक नहीं हो जाते, सर्वथा अभिन्न नहीं हो जाते, द्रष्टा अपने द्रष्टृ-भाव (अहंभाव) से ऊपर नहीं उठ जाता तब तक उसे द्रष्टव्य देव का साक्षात्कार नहीं हो पाता।^{१४} इस दृष्टि से भी, दृष्ट मन्त्र के विशिष्ट प्रतीकों के साथ द्रष्टा ऋषि का अभेद सम्बन्ध मानते हुए, उन प्रतीकों के द्वारा ऋषियों की प्रसिद्धि स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मन्त्रों में प्रयुक्त नाम, जो ऋषि-नाम के रूप में प्रतीत होते हैं, ऋषियों के व्यक्तिगत नाम नहीं हैं। इन नामों को प्रतीकात्मक अथवा किसी विशिष्ट अभिप्राय का सङ्केतक मानने पर ही, देवता-ज्ञान के समान, ऋषि-ज्ञान की मन्त्रार्थ में उपयोगिता सुसङ्गत हो पाती है, तथा ऋषि-ज्ञान मन्त्रार्थज्ञान में सहायक सिद्ध होता है। अन्यथा ऋषि-नाम का मन्त्रार्थ से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता और तब मन्त्रार्थ की दृष्टि से ऋषि-नामों को अनुपयोगी एवम् अनावश्यक

^{११} येन यद् ऋषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै।

मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तम् ऋषिर्भावः स उच्यते ॥

^{१२} तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। निरुक्तः १.२०

^{१३} सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे। नाट्यशास्त्र १.२१ तथा ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः। वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः ॥

(महाभारत शान्तिपर्व के नाम से यह श्लोक अनेकत्र उद्धृत है)

^{१४} तद् अपश्यत् तदभवत् तदासीत् । यजुर्वेद ३२.१२; वैदिक ऋषि-एक परिशीलन, पृ. १४

मानना होगा। जो भी हो ऋषि अतीन्द्रियार्थद्रष्टा, अलौकिकदृष्टिसम्पन्न, क्रान्तदृष्टा, तपस्वी साधक मनीषी को ही कहा जा सकता है। सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृतवाङ्मय इन ऋषियों की शाश्वत-साधना का ही प्रतिफल है।

वैदिक ऋषियों का वर्गीकरण

वैदिक ऋषि दो श्रेणियों में विभक्त हैं – (१) एकाकी, और (२) पारिवारिक

१. एकाकी ऋषि

वेदमन्त्रों के प्रकटीकरण में जिन ऋषियों ने स्वयम् अनवरत प्रयत्न किया, परिवार के किसी सदस्य ने कोई सहायता नहीं की, उन्हें ‘एकाकी’ कोटि में रखा जाता है। ऐसे ऋषियों की संख्या ८८ है।

२. पारिवारिक ऋषि

‘पारिवारिक’ ऋषि वे हैं, जिन्हें इस पावन प्रयत्न में अपने परिवार के एक या अनेक सदस्यों का सहयोग प्राप्त रहा। इनकी अगली पीढ़ियों में भी वेदाविर्भाव-कार्य की क्रमबद्ध परम्परा चलती रही। ये पारिवारिक ऋषि गणना में ३१५ हैं।

ऋषिगणों में सप्तर्षियों का विशिष्ट स्थान है। ये सप्तर्षि ऋग्वेद के नवममण्डल के १०७ वें तथा दशममण्डल के १३७ वें सूक्तों के द्रष्टा हैं।

सात परिवारों में इनके विभाजन का क्रम इस प्रकार है – (१) गौतम, (२) भारद्वाज, (३) विश्वामित्र, (४) जमदग्नि, (५) कश्यप, (६) वसिष्ठ तथा (७) अत्रि।

इनमें गौतम-परिवार के ४, भारद्वाज के ११, विश्वामित्र के ११, जमदग्नि के २, कश्यप के १०, वशिष्ठ के १३ तथा अत्रि-परिवार के ३८ ऋषि हैं। अन्य परिवार प्रकारान्तर से इन्हींके कुटुम्बी या सम्बन्धी हैं।

गवेषणात्मकदृष्टि से अवलोकन करने पर जो महत्त्वपूर्ण अतिदुर्लभ ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर इन सात परिवारों का समावेश मुख्यतया चार ही परिवारों में स्वीकार किया जाता है- आङ्गिरस, भार्गव, काश्यप और आत्रेय। इनमें भी सबसे अधिक परिवार वाले आङ्गिरस ही हैं। इनकी संख्या ५६ है। गौतम तथा भारद्वाजों का अन्तर्भाव इन्हीं में है। वैश्वामित्र और जामदग्नि-परिवारों का समावेश भार्गवों में है। वशिष्ठ-परिवार काश्यप के अन्तर्भूत है। आत्रेय-परिवार पूर्णतया स्वतन्त्र है।

प्रजापति ने यज्ञ द्वारा तीन पुत्र उत्पन्न किए- भृगु, अङ्गिरा तथा अत्रि। भृगु के कवि, च्यवन आदि अनेक पुत्र हुए। भृगु के ही एक पुत्र थे ऋचीक, जिनके बनाये हुए चरुओं के भक्षण से गाधिपुत्र विश्वामित्र तथा स्वयम् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि का जन्म हुआ। जमदग्नि के पुत्र परशुराम तथा विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा थे। अपने सौ भाइयों में मधुच्छन्दा का प्रमुख स्थान था। मधुच्छन्दा के दो पुत्र थे- जेता और अघमर्षण। अतः वैश्वामित्र-परिवार को भार्गव-परिवार से भिन्न नहीं समझना चाहिए।

वैदिक ऋषि-तत्त्व-विमर्श

अङ्गिरा के दो पुत्र थे उतथ्य (उचथ्य) तथा बृहस्पति। बृहस्पति के चार पुत्र हुए – भरद्वाज, अग्नि, तपुर्मूधा और शंयु। भरद्वाज के ही पुत्र थे पायु, जिनकी कृपा से राजा अभ्यावर्ती तथा प्रस्तोक युद्ध में विजयी हुए थे। बृहस्पति के ज्येष्ठभ्राता उतथ्य के पुत्र दीर्घतमा थे और दीर्घतमा के कक्षीवान्। कक्षीवान् के घोषा काक्षीवती नाम की कन्या तथा शबर और सुकीर्ति नामक दो पुत्र थे। घौषेय सुहस्त्य कक्षीवान् के दौहित्र थे। इस प्रकार भारद्वाज-परिवार आङ्गिरस-परिवार की ही शाखा सिद्ध होता है। ३३ सदस्यों वाले जिस काण्व-परिवार का ऋग्वेद के अष्टममण्डल में विशेष प्रभाव है, वह आङ्गिरसों का ही अङ्ग है; क्योंकि उस परिवार के मूलपुरुष काण्व के पिता घोर-आङ्गिरस ही थे।

गौतम-परिवार भी आङ्गिरस-परिवार से ही सम्बद्ध है, क्योंकि गौतम की अङ्गिरा-सम्बन्धी परम्परा यह है – अङ्गिरा, रूह्यगण, गौतम, वामदेव, वामदेव के भ्राता नोधा तथा नोधा के पुत्र एकद्यु ।

वसिष्ठ-परिवार का समावेश कश्यप-परिवार में है। इस सम्बन्ध की द्योतक वंश-परम्परा इस प्रकार है- मरीचि, कश्यप, मैत्रावरुण, वसिष्ठ, शक्ति तथा पराशर।

अत्रि-परिवार स्वतन्त्र है। इनकी वंश-परम्परा में अत्रि, भौम, अर्चनाना, श्यावाश्व तथा अन्धीगुश्यावाश्वि नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ. प्रयाग नारायण मिश्र

असि. प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,
(उत्तरप्रदेश)